ओट

हरि भटनागर

हिन्दी ADDA

ओट

https://www.hindiadda.com/oat-hari-bhatnagar/

बाहर की साफ-सफाई के लिए नया जमादार मिल गया।

पहले जो जमादार था, बहुत ही गड़बड़ था। हर वक्त दारू चढ़ाए रहता और काम पर भी रोज नहीं आता था। एक दिन आता, चार दिन गायब। ऊपर से हर दिन पैसे की माँग। तंग आ गया था मैं उससे। मुझे बाहर की सफाई तो करनी ही पड़ती, कचरा अलग उठाकर ले जाना पड़ता। यह अच्छा हुआ, उसने खुद ही आना छोड़ दिया।

नया जमादार ढंग का लग रहा है। कोई ऐब नहीं दिख रहा है उसमें, सिवाय खैनी-सुर्ती के। लगता है, ढंग से काम करेगा।

सुबह जब वह काम पर आया तो उसके साथ उसकी घरवाली भी थी। उसकी घरवाली थी तो गहरे काले रंग की, मगर नाक-नक्श उसके तीखे और ध्यान खींचते थे। साफ-धुले कपड़े और ढंग से की गई चोटी। लंबी माँग में माथे पर सूत भर सिंदूर। छोटी लाल बिंदी और नाक में चमकती लौंग। अपनी धज में वह जमादारिन नहीं लग रही थी।

काम के दौरान राजू एक तरफ बैठ गया, उकड़ूँ। कमीज की जेब से उसने खैनी निकाली, उस पर चूना डाला और देर तक मलने-पीटने के बाद दाँतों के आगे दाब ली। थोड़ी देर तक खैनी के रस को चुभलाने और उसके मीठे सुरूर में तैरने के बाद, उसने आसमान की ओर देखा, मानो फिल्मी गीत गाने के मूड में हो। जिसकी एक दो कड़ी उसने कंठ में गुनगुनाई भी, लेकिन पता नहीं क्या सोचकर वह मुस्कुराया। उसने पत्नी की ओर देखा।

उसकी घरवाली धोती को फेंटे की तरह अच्छे से कसकर सींकोंवाली झाड़ू का तार ठीक करने में लगी थी जो ढीला होकर हाथ में चुभ रहा था।

तार कसकर वह झाड़ू लगाने लगी। छोटा-सा चबूतरा था और तकरीबन उतना ही बड़ा बगीचा जिसमें अशोक के दो चार पेड़ थे और विशालकाय बोगनबेलिया जो ऊपर फैलकर छत पर चली गई थी।

जब राजू मुस्कुराया, ठीक उसी वक्त उसकी घरवाली ने उसे देखा और यूँ ही पूछा कि वह मुस्कुरा क्यों रहा है?

राजू ने मुस्कुराने का कारण नहीं बताया और कंठ में अंदर ही अंदर फिल्मी गीत की कड़ी गुनगुना उठा जिसमें नायिका अपने प्रेमी को परदेश जाने से दुखी स्वर में रोक रही है।

राजू की घरवाली से भी नहीं रहा गया और वह भी एक नए फिल्मी गाने की कड़ी गुनगुनाने लगी जिसमें प्रेमी अपनी माशूका को नजर से कभी दूर न होने की अरदास करता है।

गाने-गाने में सफाई हो गई। झाड़ू पटककर राजू की घरवाली एक तरफ बैठ गई और पसीना पोंछने लग गई धोती के पल्लू से। राजू ने उठकर कनस्तर में कचरा भरा और मेरी ओर देखा जैसे एहसास दिला रहा हो कि कितना कचरा, कितनी गंदगी थी! सब साफ हो गई! लोग समझते हैं, सफाई का काम सहल है, लेकिन बड़ी मेहनत का काम है, पसीने आ जाते हैं और धज बिगड़ जाती है। मेरी घरवाली को देखो, साफ सुथरी आई थी, गर्द से छिब गई है।

मैं मुस्कुराया। वह सख्त बना रहा।

मैंने बीस का नोट निकला। वह मुस्कुरा उठा। और मेरी ओर दौड़ता हुआ-सा बढ़ा। नोट लेकर उसने माथे से लगाया और मेरे पाँवों की तरफ झुक गया। मेरी बढ़ती की कामना की उसने।

सुबह आठ के आस-पास दोनों का बँधा-बँधाया समय था, आने का। दोनों आते। आते ही राजू एक तरफ बैठ जाता, खैनी मलता-पीटता, मुँह में रखता और उसके रस में दीवाना हो, तरह-तरह के दर्दीले गीत और कुछेक की सिर्फ कड़ियाँ गुनगुनाता कई-कई बार कि माहौल गमगीन हो जाता।

उसकी घरवाली झाड़ू लगाते-लगाते रुक जाती और उसका कंठ अवरुद्ध हो जाता, वह रोने-रोने को हो आती।

इसी तरह दिन बीत रहे थे कि राजू को एक बड़े कांप्लेक्स में काम मिल गया। मैं डरा कि अब यह गया हाथ से! जाहिर था कि कहाँ दो-चार घर और कहाँ पूरा कांप्लेक्स! लेकिन मेरा डर निर्मूल साबित हुआ जब उसने घरवाली को वहाँ जमा दिया और खुद यहाँ अकेले आने लगा।

पहले दिन उसने इतने सलीके और लगन से काम किया जिसका मुझे भरोसा न था। मैं इस सोच में था कि बीवी से काम कराने वाला यह दुष्ट ढंग से क्या काम करेगा। लेकिन जब उसने काम किया तो मैं दंग था! उसने इतने अच्छे से सफाई की कि उसकी घरवाली की भी सफाई पीछे छूट गई थी।

राजू को मैंने उस रोज दस का नोट दिया चाय के लिए जिसे वह लेने से मना करता रहा, आखिर में उसने ले लिया।

राजू दुबला-पतला है, मरा-मराया सा। लगता है टी.बी. होगी; लेकिन उसे टी.बी. न थी। उसकी काठी ही ऐसी थी। वह तकरीबन तीस-एक साल का होगा, मगर पैंतालीस-पचास का आभास देता। सिर के बाल उसके खिचड़ी थे और ऐसे उलझे-लटियाये जैसे उनमें कभी पानी की बूँद न पड़ी हो। आँखें पीली-पीली बिगी की याद दिलातीं जो बाहर को निकली-सी पड़ती लगतीं। काले चुचके चेहरे पर दाढ़ी-मूँछें इतनी सघन थीं कि लगता बारीक जाली कसी हो। वह काफी लंबा था - तकरीबन छे फुट का, थोड़ा-सा आगे को झुका। झुकाव की वजह से महसूस होता उसकी कमर में तकलीफ है। क्योंकि काम करते वक्त वह बायाँ हाथ कमर पर रख लेता और चेहरे पर ऐसी पीड़ा दिखती, मानों कराहने वाला है। हाथ उसके लंबे-लंबे बंदरों जैसे थे, काले गझिन बालों से भरे।

पाँच-छे महीने वह रोजाना बिना नागे के, निश्चित समय पर आया। और बहुत ही तरीके से काम किया। फिर पता नहीं क्या हुआ कि गोल मारने लगा। एक दिन आता, दो दिन गायब। दो दिन आता पाँच दिन फरार। चेहरे पर चिंता की सतरें चढ़ती-उतरती दिखतीं। गीत की कड़ियाँ जो डूब के दर्दीले स्वर में गुनगुनाता था - उसके पपड़ाये होठों पर दफन हो गईं। मैंने कई बार घेरकर उससे हाल जानना चाहा, लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। चुप्पी साधे रहा।

साफ-सफाई का अब पहले जैसा हाल था - गंदगी, कचरा और बड़बड़ाता-गुस्साता मैं। किसी से कह सकने को लाचार।

एक सुबह जब मैं खुद सफाई कर रहा था, वह आया। मैं जलकर खाक हो गया। अंदर ही अंदर चुन-चुन के गालियाँ देने लगा कि कोई भी भला मानुस सुने तो तौबा कर ले।

वह झाड़ू लगाने के लिए बढ़ा कि मैंने तड़पकर कहा - 'रोज क्यों नहीं आता? कहाँ चला जाता है?'

कमर झुकाए, उस पर बायाँ हाथ रखे जैसे तकलीफ में हो, रूखेपन से वह बोला -'साब, पेसे बढ़ाइये, पचास में काम नईं हो पावेगा!'

उसका लहजा मुझे खराब लगा। आदमी काम करे, फिर पैसे की माँग करे तब बात समझ में आती है - ढंग से काम नहीं, फिर पैसा काहे का! फिर भी जब्त करता मैं बोला - 'पैसे बढ़ जाएँगे, पहले रोज तो आ।'

वह बोला - 'रोज आऊँगा, आप पेसे बढ़ाइए।'

- 'साठ रुपये कम हैं, जरा से कम के?'- मैं अकड़ा।

- 'जरा सा काम है तो आप कर लो' - वह तिड़ककर बोला, लेकिन तुरंत ही अपने को सँभाल के विनीत स्वर में बोलने लगा - 'हुजूर, काम जरा सा हो या बड़ा सा, आना तो पड़ता है, फिर साठ-सत्तर रुपये में आज भला होता क्या है! मैं सीवर और दस घरों के काम से हजार कमाता हूँ, घरैतिन भी इतना खैंचती है, लेकिन कुछ बचता नहीं, सब उड़ जाता है। क्या करूँ साब, कुछ समझ में नईं आता!' कहते-कहते वह नोंचता हुआ-सा अपनी दाढ़ी खुजाने लगा।

- 'दो हजार तुझे कम पड़ते हैं, जबकि बिजली-पानी और जगह सब मुफ्त!' - मैं बोला तो उसका जबाव था - 'हुजूर, बिटिया बीमार है, जो पैसे हाथ में आते हैं, इलाज में फुँक जाते हैं...'

'क्या हुआ है उसे?' - मैं नरम पड़ा - 'तूने तो कभी जिकर भी नहीं किया उसका!'

- 'क्या करता जिकर करके हुजूर!' वह चुप हो गया, फिर सिर झटक कर आगे बोला - 'समझ नईं आता हुजूर, दोनों पैर उसके सुन्न हैं, अब सारा जिस्म भी सुन्न होता जा रहा है। वह रोटी भी नईं खा पाती...' कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगा।

मैं सोचने लगा, कैसे-कैसे लोग हैं, कलेजे में दर्द छिपाए... गला मेरा भर आया। यकायक अपने को सँभालकर बोला - 'यहाँ हमीदिया अस्पताल में दिखाया?'

वह रोते-रोते बोला - 'हुजूर, सब जगह दिखला चुका हूँ, झाड़-फूँक बची थी, बो भी कर रहा हूँ, कहीं से कोई आराम नईं...'

गहरी साँस लेता मैं चुप हो गया।

वह आँसू पोंछता, नाक सुड़कता, कमर पकड़े धीरे-धीरे झाड़ू लगाता रहा, फिर डुगरता चला गया।

इसके बाद वह चार-छे रोज ही आया होगा, फिर ऐसा गायब हुआ कि छे महीने बाद दिखा। उसकी घरवाली भी मुझे कहीं नहीं दिखी। इस बीच कॉप्लेक्स के कुछ लोगों ने उसके बारे में हल्की बातें जरूर कीं कि बाजारू औरत है। चल रही है। कर्नल चौहान ने तो यहाँ तक बताया कि भिंड के एक पाँड़े ने तो उसे राख-सा लिया है। कहता है, जमादारिन नहीं, बाभनी है...

उस दिन तरकारी लेने जब मैं हाट जा रहा था, पुल के पास उकड़ूँ बैठा वह मिला। समूची हुलिया उसकी पहले जैसी थी, सिर्फ कमीज बदली थी। फटी, चीरे लगी कमीज की जगह साबुत कमीज वह डाटे था। बेतरह पान चाभे था और सामने की धूल भरी जमीन पर लंबी पिचकारी-सी मारता जा रहा था। शराब भी अच्छे से खैंचे था। आँखें और भी पीली थीं, चढ़ी-चढ़ी सी।

उसे देखते ही मैं ठिठका, करीब जाकर बोला - 'क्यों राजू, तुमने तो दिखना ही बंद कर दिया। कहाँ हो आजकल?'

मेरे कहे का उस पर कोई असर न था।

यकायक पान की पीक सामने मारता, डगमगाता-सा, नकीली आवाज में वह बोला - 'हुजूर, हमने हाथ के सारे काम छोड़ दिए, अब कुछ नईं करता!' - मुस्किया के वह आगे बोला - 'घरैतिन भी नईं करती साब!' उसने सिर झटका जैसे कोई दुख देने वाली बात याद आ गई हो, गुस्साकर बोला - 'क्यों करें साब काम? क्यों करें? हट्ट! हट्ट!!' बेतरह झल्लाकर उसने अपना सिर पीट लिया और एक जोरदार अस्पष्ट सी आवाज, मुँह आसमान की ओर करके, गले से बुलंद की और शांत हो गया।

मैंने कहा - 'कहीं से कोई जुगाड़ जम गई है क्या?'

हाथ उठाकर इनकार करता-सा बोला - 'नईं सरकार, कोई जुगाड़-फुगाड़ नहीं! बस अपन खुस्स हैं बहोत खुस्स!!!'

'बच्ची कैसी है?'

- 'वह तो गुजर गई हुजूर, अच्छा ही हुआ! अपाहिज जी के क्या करती! भगवान ने उसकी सुन ली।'

धीरे-धीरे लहराता-डगमगाता-सा वह उठ खड़ा हुआ मुस्कुराता, जैसे उल्लास की तरंग में हो, धीमे स्वर में बोला - 'हुजूर, मैं तो आपके पास आता, सुकर है, आप खुद ही मिल

गए' - सहसा चुप होकर उसने आस-पास नजरें दौड़ाईं जैसे कोई सुन तो नहीं रहा है उसकी बात, वह आगे बाला - 'आप मेरी झुग्गी में चलें, आपकी तबियत गिल्ल हो जाएगी।'

कहते हुए उसने मेरी कलाई पकड़ ली। पंजे उसके सड़सी जैसे सख्त थे। ताकत लगाकर किसी तरह उससे कलाई छुड़ाई और पीछे हट गया।

अपनी जगह पर झूमता नकीली आवाज में वह बोला - 'ठीक है साब! आपकी मर्जी!' कहता वह बैठ गया। जेब से कागज के पुड़े में से उसने ढेर-सी गिलौरियाँ निकालीं और मुँह में ठूँस लीं। ठूँसते वक्त उसने पीली-पीली चढ़ी आँखें मेरी ओर कीं और कहा - 'हुजूर, पान-वान लेंगे? आपकी दया से कोई टोटा नईं है...'

माथा सिकोड़े मैं चुप खड़ा रहा। गोया उसके पान पर लानत भेज रहा होऊँ।

उस दिन हाट जाते हुए मैं यही सोच रहा था कि राजू की हुलिया बदली हुई थी और अपने को वह भारी खुश बता रहा था, फुसफुसाकर झुग्गी पर भी बुला रहा था, आखिर बात क्या है। मुझे लोगों की बातों का ख्याल आया जो उसकी घरवाली को लेकर की गई थीं... जरूर कुछ मामला है... इन्हीं बातों को जानने की जिज्ञासा मुझे उसके ठीहे की ओर ठेल रही थी। और न चाहते हुए भी मैं चौथे दिन शाम के झुटपुटे में उसकी झुग्गी की ओर बढ़ा, लेकिन आधे रास्ते से लौट आया - यह सोचकर कि कहाँ कीचड़ में पैर फँसा रहा हूँ, भाड़ में जाय साला, अपने को क्या?

लेकिन दूसरे दिन मैं अपने को रोक नहीं पाया और उसकी झुग्गी के सामने था।

उसकी झुग्गी असंख्य पन्नियों से ढकी-मुँदी थी और आस-पास की झुग्गियों से अलग न थी, बल्कि उनसे ज्यादा गिराऊ हालत में थी। आगे छोटा-सा कच्चा गोबर लिपा चबूतरा था। टटरा नीचा था, काफी झुककर अंदर जाना पड़ता होगा।

सामने नाली थी, दुर्गंध छोड़ती। ठहरी हुई-सी। मच्छर-मक्खियों से भरी। एक छोटा सा लड़का लकड़ी घुमाते हुए मच्छर-मक्खियों को मार रहा था जो उसकी गेंद पर बैठे थे। नाली पर तीन चार लचकदार बाँसों को बाँधकर रखा गया था। यह छोटा सा पुल था, झुग्गी में पहुँचने के लिए।

जब मैं झुग्गी के सामने ठिठका, राजू नशे में धुत्त बाहर टटरे के पास बैठा, मच्छरों को गालियाँ देता मिला। मुँह में पान ठँसा था। आँखें चढ़ी हुईं।

मुझे देखते ही वह सहसा चहक सा उठा और पुल पर डगमग दौड़ता हुआ मेरे पास आया और मेरे पाँव की ओर झुका। यकायक वह जोर से बोलने लगा - 'साब, पूरी कालोनी का हाल बुरा है, सब दूर सीवर लाइनें टूटी हैं, वह साला मियाँ सब के पेसे खा के भी काम नईं कराता! लेकिन हुजूर आप फिकिर न करें, अपन सब ठीक कर देंगे, आईने जेसा...!'

मैंने देखा राजू पास की झुग्गी से निकले मजूर को देखकर जोर-जोर से सुनाने लगा था ताकि वह समझ ले कि सीवर का मामला है, इसलिए साहब ड्योढ़ी पर आए हैं।

लेकिन जैसे ही मजूर अपनी झुग्गी में अंदर गया। राजू ने मेरी ओर देखा, आँख मारी और मुस्कुराया जैसे कह रहा हो कि क्या चूतिया बनाया उसे!

मैंने जाने का बहाना किया कि उसके चेहरे पर रहस्यमयी मुस्कान फैल गई। आँखें चमक उठीं। मानों कह रही हों कि ऐसे-केसे चले जाओगे?

उसने अगल-बगल चौकन्नी निगाह दौड़ाई, उस मजूर की झुग्गी की ओर देखा जो अंदर चला गया था और दो-तीन झुग्गियों की तरफ देखा जिनकी आँखें और कान उसकी झुग्गी की तरफ हर वक्त लगे रहते थे जैसे वे किसी टोह में हों। जब कोई न दिखा तो फिर वह जोर से बोलने लगा, किसी को सुनाने के अंदाज में - 'सरिया लाना होगा और बेलचक, काम के लिए एक छोरे को भी पकड़ना होगा, सीमेंट रेत तो होगी' - यकायक वह मेरे कान के पास फुसफुसाने लगा - 'ड्योढ़ी पे आए हैं तो कुछ...!'

उसकी बात का मर्म समझता कि उसने मेरी कलाई पकड़ ली। वही सड़सी जैसी पकड़। डगमगाता सा अब वह मुझे झुग्गी के अंदर खींच रहा था।

मैं कोई विरोध न कर सका और सिर नवाकर जब झुग्गी में घुसा तो घुप्प अँधेरे में कुछ सूझ नहीं रहा था।

- 'कुप्पी तो जला!' - तीखी किंतु मद्धिम आवाज में, तकरीबन दाँत पीसते हुए वह किसी से बोला।

- 'जलाई तो रई हूँ!' आवाज उसकी औरत की थी।

माचिस पर काड़ी की रगड़ हुई और पीली मटमैली-सी रोशनी हो उठी। जलती काड़ी पकड़े उसकी घरवाली कुप्पी जला रही थी। रोशनी में उसका चेहरा रोशन था, नाक में चमकती लौंग, छोटी-सी बिंदी, सिंदूर और आँखें - सब कुछ झिलमिल!

सहसा राजू मद्धिम आवाज में अस्पष्ट-सा कुछ बोलता, मुझे अकेला छोड़कर डगमगाता सा टटरे के बाहर चला गया जैसे कह रहा हो, आप बैठें, मैं बाहर हूँ।

कुप्पी जल चुकी थी और उसकी रोशनी में सब कुछ साफ था।

एक गंदी-सी मोटी नम दरी झुग्गी के बीचोबीच बिछी थी जिस पर अकबकाया-सा बैठा मैं झुग्गी का जायजा़ ले रहा था। झुग्गी के एक कोने में रसोई के बर्तन जमा थे और उसी के बगल में मोरी थी, जहाँ से पेशाब की तीखी बास आ रही थी। दूसरी तरफ लोहे का एक पुराना जंगखाया बक्सा था जिस पर जर्जर, सड़ी रजाइयाँ थीं और ढेर सा गूदड़। बक्से के पास टीन के कनस्तर पर कुप्पी थी जो अँधेरे में तिलक की तरह खिंची थी, एकदम सीधी। कुप्पी का हल्का धुआँ छत की ओर रुख किए था। पास ही प्लास्टिक की पानी भरी बाल्टी थी जिसमें मग तैर रहा था।

दरी के एक छोर पर राजू की घरवाली बैठी थी, हथेली के सहारे टिकी हुई। उसकी धज में जरा भी फर्क नहीं था, बल्कि वह और निखर आई थी।

मुस्कुराते हुए उसने मुझे पीने के लिए पानी दिया। मैंने पानी भरा गिलास ले तो लिया, लेकिन मुँह से नहीं लगाया, हाथ में लिए रहा - गंदा पानी पीने से मैं बच रहा था।

मैं तो महज राजू और लोगों की उड़ाई बातों का रहस्य जानने के लिए निकला था, दूसरी कोई बात दिमाग में न थी। मगर यहाँ दूसरे ही जाल में गिरफ्तार हो गया था। मैं भाग निकलना चाहता था लेकिन पता नहीं क्या था जो मुझे दबोचे बैठा था और लाचार-सा मैं वह सब कुछ करने को उतावला था जिसे मैं कभी कबूल न करता।

सहसा तेल न होने के कारण या बत्ती नीचे खिसकने के कारण कुप्पी डूबने-डूबने को हुई... फिर पता नहीं क्या हुआ कि मैं अपना आपा खो बैठा। उस बहाव में मैंने उसकी कलाई पकड़ ली। हम गुत्थम-गुत्थ थे।

अपने को सँभालता मैं झुग्गी के बाहर आया। राजू की ओर सौ का नोट फेंका और घर की ओर सरपट भागा। एक अव्यक्त सा अपराधबोध था जिसके तले मैं दबा जा रहा था और तेजी से भागते हुए घर पहुँच जाना चाहता था मानों घर पहुँचकर उससे छुटकारा पा जाऊँगा।

उस दिन पूरी रात और दूसरे दिन शाम तक मैं गहरे अफसोस और अपराधबोध में रहा। लेकिन जब रात गाढ़ी हुई, पता नहीं क्या हुआ, मैं पूरी तरह उससे मुक्त था और राजू की झुग्गी के पास खड़ा था।

और सच कहूँ, उस रात के बाद मैं रोजाना रात के अँधेरे में उसकी झुग्गी पर पहुँचने लगा। राजू की घरवाली में पता नहीं ऐसा क्या था जो मुझे खींचता था और मैं बेबस-सा उसकी तरफ खिंचता चला जाता, गफलत की हालत में।

इस तरह दिन बीतते जाते थे।

मैं आता और राजू के इशारे के बिना, अब निधड़क टटरा सरकाता और झुग्गी में घुस जाता। राजू का वह खौफ भी जाता रहा जो पहले, शुरू के दिनों में आसपास की चौकन्नी निगाहों के लिए हुआ करता था।

उस रात जब दूधिया चाँदनी बरस रही थी और हवा में गुलाबी ठंड अपना जादू बिखेरे थी, मैं अपने घर से निकला और धीरे-धीरे टहलता हुआ, राजू की झुग्गी के आगे आ खड़ा हुआ। राजू की घरवाली उस वक्त पड़ोसन के टटरे के पास खड़ी उससे बतिया रही थी। राजू अपने टटरे के आगे नशे में झूमता, बुरी तरह चाभे पान के बीच फिल्मी गीत की कोई कड़ी चील की टिहकारी की तरह आलाप रहा था कि मैंने खाँसा।

मैंने खाँसा इसलिए कि राजू की घरवाली को पता चल जाए कि मैं आ गया और वह देर न करे।

राजू की घरवाली पर कोई हरकत न होती देख मैंने दो-तीन खाँसा, फिर भी वह काठ बनी रही। और उस कंजड़िन से बतियाने में लगी थी। अब मैं बाहर रुक न सका। भयंकर गुस्से में भर गया। एकाएक मैंने जोर से टटरा सरकाया और झुग्गी के अंदर चला गया। दिमाग में गालियाँ मार कर रही थीं कि साली ने मेरी ओर देखा तक नहीं, न उसका एहसास दिलाया... एहसास भर दिला देती तो तसल्ली हो जाती, फिर देर से आती; लेकिन उसने ऐसा कुछ न किया। यह तो हद है... इंतजार करता मैं उसे मन ही मन कुचल रहा था...

इंतजार मुझे उतना छेद नहीं रहा था जितनी जान-बूझकर बरती गई उपेक्षा। मैं तड़प रहा था उसमें कि वह आई।

वह खासा नाराज थी और मुझसे कहे जा रही थी - 'सबके सामने तो खाँसा-खूँसा न करो।' - एकाएक वह रुआँसी हो आई - 'उस कमीन के सामने मुझे कितना नीचा देखना पड़ा, मैं ही जानती हूँ... उसने कुछ कहा नहीं लेकिन उसकी आँखें सब कुछ कह रही थीं' - आँखों से आँसू बह निकले उसके - 'थोड़ा सबर करते, मैं तो खुद आती, बिना बुलाए...'

उसकी बात से मुझे काठ-सा मार गया था!